International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 06-11-2020; Accepted: 21-11-2020; Published: 06-12-2020
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 6; 2020; Page No. 126-129

पुराणों में राष्ट्रीय भावना

डॉ. अजित कुमार[1], सुनील कुमार[2]
[1] संस्कृत विभाग, लेडीश्रीराम महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत
[2] राजनीति विज्ञान विभाग, दयालसिंह महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
राष्ट्रीय भावना का सम्बन्ध राष्ट्रभूमि की एकता और अखण्डता से गहरा होता है। अपने राष्ट्र और प्रत्येक वस्तु से स्नेह, आसक्ति और उसके प्रति गर्व की भावना भी राष्ट्रीय भावना के आवश्यक तत्त्व हैं। विष्णु पुराण के द्वितीय अंश में भारत भूमि का ऐसा ही राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत वर्णन हुआ है। इस अंश के तृतीय अध्याय में भारतभूमि का विस्तार, उसके पर्वत, वन, नदियाँ आदि वर्णित हैं और भारत का गौरवगान किया गया है।
पुराणों में इसे पुण्यभूमि कहा है जिसके गीत देवता भी गाते हैं। देवता कहते हैं कि धन्य हैं वे मनुष्य जिन्होंने भारतभूमि में जन्म लिया क्योंकि यही वह भूमि है जो स्वर्ग और मोक्ष दोनों का मार्ग है। कारण यह है कि संसार के अन्य प्रदेश केवल भोग के निमित्त हैं। ज्ञान, कर्म और मोक्ष की आधारभूमि केवल भारत है। दूसरे शब्दों में इन गुणों का स्मरण कर देवता भी इस भूमि पर जन्म लेने के इच्छुक रहते हैं।
यथा–गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे, स्वर्गापवर्गास्पदभागभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्। [17]
इस भूमि का यह वैशिष्ट्य है कि लोग यहाँ फल की इच्छा किये बिना कर्म करते हैं। कर्मों को सर्वव्यापी परमात्मा में समर्पित करके, इस कर्मभूमि को प्राप्त कर वे शुद्ध चरित्र वाले होकर उस अनन्त परमात्मा में ही लीन हो जाते हैं–

मूलशब्दः पुराण, राष्ट्रीय भावना, भारत माता, हिमालय, राष्ट्रभूमि, अखण्डता, विष्णुपुराण, भरत

प्रस्तावना
हमारे देश भारतवर्ष के नामकरण का ऐतिहासिक आधार क्या है? किस भरत के नाम पर इसे भारत कहा जाने लगा? ऋषभदेव पुत्र भरत? या दुष्यन्त पुत्र भरत? या फिर किसी अन्य भरत के कारण भारतवत्ता चरितार्थ हुई? इन सभी प्रश्नों को लेकर जब हम वैविध्यपूर्ण पौराणिक अनुश्रुतियों की ओर दृष्टिपात करते हैं तो अनेक मान्यताएँ सामने आती हैं। मार्कण्डेय पुराण में यह उल्लेख आया है कि नाभिराय तथा मेरुदेवी के पुत्र ऋषभदेव ने अपने पुत्र भरत को हिमालय का दक्षिणवर्ती राज्य सौंपा था, कालान्तर में इन्हीं भरत के नाम पर भारतवर्ष नाम प्रसिद्ध हुआ–

हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ।
तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः।। [1]

वायु पुराण [2], अग्नि पुराण [3], कूर्म पुराण [4], ब्रह्माण्ड पुराण [5], वराह पुराण [6], लिंग पुराण [7], श्रीमद् भागवत पुराण [8], नृसिंह पुराण [9], आदि में भी किंचित शब्दान्तर सहित यही तथ्य स्वीकार किया गया है कि ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम पर ही भारतवर्ष का नामकरण हुआ। उधर जिनसेन कृत आदिपुराण [10], रविषेण कृत पद्मपुराण [11], पुरुदेव चम्पू [12], आदि जैन वाङ्मय में भी यही उद्घोषित हुआ है कि आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम पर ही हिमालय पर्वत से लेकर समुद्रपर्यन्त का क्षेत्र भारत वर्ष कहलाता है–

तन्नाम्ना भारतं वर्षमितिहासीज्जनास्पदम्।
हिमाद्रिरासमुद्राच्च क्षेत्रं चक्रभृतामिदम्।। [13]

दूसरी ओर भारतीय काल गणना के विशेषज्ञ पं. चन्द्रकान्त बाली ने अपने लेख 'किस भरत के नाम पर भारत' नामक लेख में ऋषभदेव पुत्र भरत के नाम से भारतवर्ष का नामकरण स्वीकार करने वाली उपर्युक्त वैदिक तथा जैन और पौराणिक अनुश्रुतियों का खण्डन करते हुए यह मत स्थापित किया है कि दौष्यन्तिक भरत के नाम से ही इस देश की भारत संज्ञा प्रसिद्ध हुई है। उनका तर्क है कि दुष्यन्त पुत्र भरत 5866–5788 ईस्वी पूर्व में हुए थे जबकि ऋषभदेव के पुत्र जड़ भरत का समय 4016 ई. पू. के लगभग रहा था। इसलिये पूर्ववर्ती दौष्यन्तिक भरत के नाम पर ही भारतवर्ष नाम प्रचलित होना तर्कसंगत है। [14]
भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय भावना कोई नई बात नहीं है। अत्यन्त प्राचीन काल से राष्ट्र की अवधारणा विद्यमान रही है। वेद में राष्ट्र की रक्षा हेतु सूत्र रूप में राजा अथवा शासक का ब्रह्मचारी (ज्ञानी तथा संयमी) और तपस्वी (परिश्रमी) होना आवश्यक बताया गया है। यथा– ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति। [15]
परवर्ती साहित्य में जम्बूद्वीप एशिया को भारत भूखण्ड की एक अखण्ड इकाई के रूप में देखा गया है। रामायण में वर्णन है कि सीता की खोज में सुग्रीव के सैनिक भारत की सभी दिशाओं में जाते है। [16] इस वर्णन में भारत का जो चित्र उभर कर आता है, उसकी सीमाएँ वर्तमान भारतीय प्रायद्वीप (पाकिस्तान और बंगलादेश समेत) से अधिक विशाल है। राम के वनगमन मार्ग के माध्यम से भी वाल्मीकी ने भारत भूमि की एकता और अखण्डता प्रदर्शित की है। रघुवंश में रघु का दिग्विजय वर्णन भी इसी का साक्षी है।
राष्ट्रीय भावना का सम्बन्ध राष्ट्रभूमि की एकता और अखण्डता से गहरा होता है। अपने राष्ट्र और प्रत्येक वस्तु से स्नेह, आसक्ति और उसके प्रति गर्व की भावना भी राष्ट्रीय भावना के आवश्यक तत्त्व हैं। विष्णु पुराण के द्वितीय अंश में भारत भूमि का ऐसा ही राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत वर्णन हुआ है। इस अंश के तृतीय अध्याय में भारतभूमि का विस्तार, उसके पर्वत, वन, नदियाँ आदि वर्णित हैं और भारत का गौरवगान किया गया है।
यह वह पुण्यभूमि है जिसके गीत देवता भी गाते हैं। देवता कहते हैं कि धन्य हैं वे मनुष्य जिन्होंने भारतभूमि में जन्म लिया क्योंकि यही वह भूमि है जो स्वर्ग और मोक्ष दोनों का मार्ग है। कारण यह है कि संसार के अन्य प्रदेश केवल भोग के निमित्त हैं। ज्ञान,

कर्म और मोक्ष की आधारभूमि केवल भारत है। दूसरे शब्दों में इन गुणों का स्मरण कर देवता भी इस भूमि पर जन्म लेने के इच्छुक रहते हैं।

यथा–गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे,
स्वर्गापवर्गास्पदभागभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्। [17]

इस भूमि का यह वैशिष्ट्य है कि लोग यहाँ फल की इच्छा किये बिना कर्म करते हैं। कर्मों को सर्वव्यापी परमात्मा में समर्पित करके, इस कर्मभूमि को प्राप्त कर वे शुद्ध चरित्र वाले होकर उस अनन्त परमात्मा में ही लीन हो जाते हैं–

कर्माण्यसंकल्पितत्फलानि संन्यस्य विष्णौ परमात्मभूते।
अवाप्य तां कर्ममहीमनन्ते तस्मिंल्लयं ये त्वमत्वः प्रयान्ति।। [18]

इस प्रकार भारतभूमि केवल एक भूखण्ड ही नहीं है अपितु यहाँ की पवित्र, उदात्त विचारधारा और पुण्यात्माओं का संसर्ग इसकी विशेषताएँ हैं जिसके कारण मनुष्य आध्यात्मिक उन्नति करने में समर्थ होते हैं।

देवता स्वर्ग में स्थित होते हुए भी इस विषय में चिन्तित हैं कि स्वर्ग में स्थिति प्रदान करने वाले अपने कार्यों की समाप्ति पर हमारा पुनर्जन्म (शरीर धारण) कहाँ होगा। वस्तुतः वे भारत में ही जन्म प्राप्त करने के इच्छुक हैं। क्योंकि वे कहते हैं कि धन्य हैं वे मनुष्य जो इन्द्रियों की शक्ति से हीन हुए बिना भारतभूमि में उत्पन्न होते हैं यथा–

जामिमनैतत्क्व वयं विलिने स्वर्गप्रदे कर्मणि देहबन्धनम्।
प्राप्स्यामः धन्याः खलु ते मनुष्या ये भारते नेन्द्रियविप्रहीनाः। [19]

उपर्युक्त प्रसंग भारत को ऐसी पुण्यभूमि के रूप में प्रतिष्ठित करता है जो स्वर्ग का आधार है, जहाँ मनुष्य को कर्म करने के अधिक अवसर सुलभ हैं और उसके अनुसार वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है। परन्तु जो इस प्रकार लाभ नहीं उठाते उनकी तो नरक के रूप में अधोगति होती है।

अतः सम्प्राप्यते स्वर्गो मुक्तिमस्मात् प्रयान्ति वै।
तिर्यक्त्वं नरकं चापि यान्त्यतः पुरुषा मुने।। [20]

विष्णु पुराण में यह भी स्पष्ट रूप से कहा गया है कि इस प्रकार की स्वर्ग और मोक्ष दिलाने वाली कर्मभूमि भारत के अलावा कहीं नहीं है–

इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यं चान्तस्य गम्यते।
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां कर्मभूमौ विधीयते।। [21]

इन मन्तव्यों की वैज्ञानिकता संदिग्ध होते हुए भी पुराणकार की राष्ट्रीय भावना और भारत का सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठापन असंदिग्ध है। वस्तुतः पुराणकार के लिये यह देश मात्र एक भूखण्ड नही है, अपितु भारतीयों की आत्मा है। यहाँ के निवासी भारत की सन्तान हैं। इसका विस्तार उत्तर में हिमालय तक और दक्षिण में समुद्र (हिन्दमहासागर) तक है। नौ सहस्र योजन इसका विस्तार है–

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तत् भारतनाम भारती यत्र सन्ततिः।
नवयोजन सहस्रो विस्तारोऽस्य महामुने। [22]

सम्पूर्ण भारत के पर्वतों यथा महेन्द्र, मलय, युक्तिमान, ऋष्यपर्वत, विन्ध्यमान नामक सात कुल पर्वतों का उल्लेख पुराणकार ने किया है। [23] इसी के साथ सम्पूर्ण भारत के द्वीपों, नदियों और प्रान्तों का उल्लेख है। [24] यद्यपि पुराण में गिनाये गये सभी स्थानों का आज भी भौगोलिक स्थिति से समीकरण कठिन है। तथापि इसमें पुराणकार की सम्पूर्ण भारत को एक राष्ट्रीय इकाई के रूप में देखने की भावना अत्यन्त स्पष्ट हैं भारतीय नदियों का जल किसी में भेदभाव उत्पन्न नहीं करता, अतः इसका जल पीकर सब हृष्ट–पुष्ट होकर साथ–साथ रहते है। [25] सभी नदियों को एक समान मानने से भावात्मक राष्ट्रीय एकता की पुष्टि होती है।

भारत का राष्ट्रीय चरित्र उज्ज्वल है। यहाँ मुनि तपस्या करते हैं। याज्ञिक यज्ञ करते हैं और परलोक में उचित पद की प्राप्ति के लिये आदरपूर्वक दान दिया जाता है। [26] ये सभी कार्य जहाँ एक ओर निर्लिप्त जीवन का संकेत करते हैं वहीं ये राष्ट्रोत्थान में भी सहायक हैं। विष्णु को यज्ञ–पुरुष तथा यज्ञमय बताकर निरन्तर यज्ञों द्वारा उसकी उपासना के उल्लेख से यज्ञ का कार्य श्रेष्ठ कर्म होना तथा उसके द्वारा पर्यावरण की शुद्धि संकेतित है। [27]

राष्ट्रीय भावना का चरमोत्कर्ष हमें इस अतिशयोक्तिपूर्ण वाक्य में प्राप्त होता है, इस भारतभूमि में पुण्यों के संचय से ही सहस्रों सहस्र जन्मों के पश्चात् ही कभी कोई प्राणी मनुष्य जन्म पाता है। [28] आशय यह है कि भारत पुण्यभूमि है और यहाँ जन्म प्राप्त कर मनुष्य पुनः जन्म में भी उन्नति को प्राप्त कर सकता है। शारीरिक तथा भौतिक उन्नति से ऊपर आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करने की आधारभूमि भारत ही है। भारत के प्रति उदात्त राष्ट्रीयता की भावना जगाने के लिए पुराणों के ये विचार प्रेरणास्पद हैं।

वर्तमान युग के विभिन्न प्रकार के दबावों ने हमारी राष्ट्रीय चेतना को इतना खण्डित कर दिया है कि हमारे लिये यह एक मजबूरी हो गई है कि हम राष्ट्रीय एकता की बात को नये सिरे से उठाएँ। हम आम जनता को यह समझाएँ कि प्राचीनकाल में भी हमारा एक राष्ट्र राज्य था और उसकी सीमाओं का निर्धारण जम्बूद्वीप के द्वारा होता था। यदि आज की शब्दावली में कहें तो एशिया के इस महान् भू–भाग में जम्बूद्वीप के अतिरिक्त अनेक द्वीप भी थे परन्तु पुराणों की दृष्टि में जम्बूद्वीप ही एक ऐसा द्वीप था जहाँ हमारी आशाओं–आकाँक्षाओं की पूर्ति होती थी। उन तमाम द्वीपों में जम्बूद्वीप ही एक द्वीप था जहाँ हमारा मन अनेक–अनेक जन्मों के बाद भी यही रमना चाहता है। साधारण मानव तो क्या देवता भी इस लोक, भारत में जन्म पाना एक पुण्यकारी बात मानते हैं। 'प्रश्न यहाँ पाप–पुण्य का नहीं है। प्रश्न यह है कि ऐसे लोगों ने पूर्व जन्म में कौनसे कार्य किये थे जिससे उनका जन्म इस भूभाग में हुआ। इसका दूसरा विकल्प यह है कि भगवान ने स्वयं उन लोगों पर प्रसन्न होकर उनको इस लोक में भेज दिया है। देवता तरस रहे हैं कि हम भी इस भारत के प्रांगण में जन्म ले सकें, जिससे कि हमें भी उस मुकुन्द की सेवा करने का अवसर मिल सकेगा। हमारी इच्छा ऐसे जन्म के लिये ही है। [29] एक ओर कल्पों की लम्बी आयु उपलब्ध है और दूसरी ओर एक क्षण भर वाली आयु श्रेयस्कर है, जहाँ हमारा जन्म भारतवर्ष के इस द्वीप में होगा। क्योंकि क्षण भर वाली आयु में तो अपने सत्कर्मो द्वारा हरि के उस अभय पद को प्राप्त कर सकेंगे। [30] जहाँ पर वैकुण्ठ को देने वाली अमृत चर्चा नहीं है, ऐसे साधु–संन्यासी नहीं है जो भागवत कथा में रस लेते हैं, जहाँ पर भागवत रस से ओत प्रोत यज्ञ एवं महोत्सवों का सम्पादन नहीं होता है, ऐसा स्वर्ग भी किसी काम का नहीं है। [31] भागवत पुराण ऐसी उक्तियों से परिपूर्ण है।

पुराणों में भारतवर्ष की प्रकृष्ट प्रशस्ति की गयी है। जो आधुनिक मतवाले भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य के ऊपर देश–प्रेम के अभाव का लांछन लगाते हैं, उन्हें पुराणों में दी गयी भारत प्रशस्ति का अनुशीलन करना चाहिये। इस प्रशस्ति की पृष्ठभूमि गुप्त साम्राज्य का सुवर्ण युग माना जा सकता है। जब भारतवर्ष आधिभौतिक, भौतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में समस्त विश्व में अपना प्रतिमान रखता था और जब इसके पराक्रमी नायकों ने अगम्य तथा दुर्गम्य तरंगो वाले महार्णव को पार कर पूर्वी द्वीप पुंजों में जावा, सुमात्रा, फिलिपाइन्स आदि–आदि में अपनी सभ्यता की पताका फहरायी थी और इन द्वीपों को अपना उपनिवेश बनाया था। उस युग में भारतीयों में एक अदम्य उत्साह था, नाना देशों में अपनी संस्कृति फैलाने की अश्रान्त लिप्सा थी। तभी भारतीयों ने अपने भीतर सुप्त स्वज्योतिः पुंज का दर्शन किया था तथा उसी की आभा को विश्व के सामने छिटकाया था। इन प्रशास्तियों के अनेक आधार सूत्र हैं– (क) भारत के समान पृथ्वी का कोई भी देश नहीं है– यह समूचे भूमण्डल में अनुपम और अद्वितीय है। (ख) भारत स्वर्ग से बढ़कर है और स्वर्गवासी देवगण भारत में मनुष्य के रूप में जन्म लेने को श्रेयस्कर समझते थे। (ग) मानव जीवन के जितने मंगल तथा कल्याण होते हैं, उनके बीज भारत में विद्यमान हैं। (घ) भारत कर्मभूमि है– अन्य देश भोग भूमि हैं। भारत में सिद्धियाँ कर्म के वशीभूत होकर फलीभूत होती हैं।

इन तथ्यों को सिद्ध करने वाली कतिपय उक्तियाँ पुराणों से उद्घृत हैं। भारत कर्म भूमि है तथा स्वर्ग भोगभूमि है। इन तथ्यों की पुष्टि के लिए पुराणों में विशेष महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किये गये हैं–

(क) पृथिव्यां भारतं वर्ष तीर्थ त्रैलोक्यविश्रुतम [32]
(ख) पृथिव्यां भारतं वर्ष कर्मभूमिरुदाहृतम् [33]
(ग) अभिसम्पूजितं यस्मात् भारतं बहुपुण्यप्रदम्।
कर्मभूमिरतो देवैर्वर्ष तस्मात् प्रकीर्तितम्। [34]
(घ) कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गं च गच्छताम्। [35]
(ड़) भारतं नाम यद्वर्ष दक्षिणेन मयोदितम्।
तत् कर्मभूमिर्नान्यत्र सम्प्राप्तिः पुण्यपापयोः।
एतत् प्रधानं विज्ञेयं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्। [36]
(च) प्रयाति कर्मभूर्ब्रह्मन् नान्यलोकेषु विद्यते। [37]
(छ) कर्मभूमिमिमां प्राप्य पुनर्यान्ति सुरालयम्। [38]

आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता की दृष्टि से देवी भागवत पुराण में प्रतिपादित यही शक्ति हमें पहले राष्ट्र–शक्ति एवं तत्पश्चात् आत्मशक्ति तथा अन्त में परमात्मा की भगवत्शक्ति के रूप में विकसित करनी होगी, तभी राष्ट्रीय एकता की स्थापना के लिये किये जाने वाले हमारे प्रयास सार्थक होंगे। शक्ति की राष्ट्र के रूप में कल्पना नहीं की गई है। बहुत प्राचीन समय से ही मनुष्य ने अपनी–अपनी जन्मभूमि में मातृशक्ति की कल्पना की है। इसीलिये जन्मभूमि को मातृभूमि की पदवी प्रदान की गयी है। हमारी भारत माता की कल्पना इस शक्ति का साकाररूप है–

या सा भगवती नित्या सच्चिदानंदरूपिणी।
परात्मपरतरा देवी यया व्याप्तमिंद जगत्। [39]

एक ही आत्मतत्व इस जगत् में विभिन्न प्राणिवर्ग एवं वर्ण समुदाय के रूप में विद्यमान है उनका नाम और रूप भिन्न–भिन्न है वस्तुतः वह एक ही तत्त्व है। जैसे वृक्ष से लकड़ी होती है लकड़ी से पालकी बनती है, जिसमें लोग बैठते हैं। कोई भी चेतनपुरुष यह नहीं कहेगा कि महाराज लकड़ी पर चढ़े हुए है। राजा पालकी पर सवार बताते हैं। प्रश्न उठता है कि पालकी क्या है? रचनाकाल के द्वारा एक विशेष आकार में परिणत हुआ लकड़ियों का समूह ही तो पालकी है। लकड़ी से भिन्न पालकी का अस्तित्व नहीं है। सत्य तो लकड़ी है, पालकी विकार है। [40] इसी प्रकार सम्पूर्ण प्राणिवर्ग में वर्गगत, जातिगत, धर्मगत भेद लोक कल्पित हैं। यथार्थतः एक ही आत्मा सभी में लिंग, जाति, धर्म, वर्ण, और वर्ग भेद रहित हैं।

छान्दोग्योपनिषद में गुरु शिष्य से कहता है कि 'न्यग्रोध वृक्ष का फल लाओ', यह ले आया, ''इसे तोड़ दो'', तोड़ दिया, तात! इसमें क्या देखते हो? कुछ भी नहीं तात! गुरु ने कहा वत्स जिस सूक्ष्म तत्व को इस वटबीज की जिस अणिमा को तू नहीं देखता है उस अणिमा (शक्ति) का ही यह इतना वटवृक्ष खड़ा हुआ है। [41]

आज बदलते परिवेश में, छिन्न–भिन्न होती सामाजिक व्यवस्थाओं में यदि भारत के साँस्कृतिक एकता के वटवृक्ष को सुरक्षित रखना है जो व्यावहारिक स्तर पर विभिन्न धर्मों और मतों को भले ही स्वीकार कर लें परन्तु अन्ततोगत्वा हम सभी को यही स्वीकार करना होगा कि सभी का जीवन व्यापार एक ही भाग्य विधाता के द्वारा प्रेरित एवं संचालित है। बीज की भाँति अदृश्य, अनादिकाल से बह रही अद्वैत चिन्तन धारा को ही पुनः प्रवाहित करना होगा और यह ध्यान रखना होगा कि हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी होने से पहले हम भारतीय हैं और उससे भी पहले हम मनुष्य हैं जिसमें एक ही आत्मतत्त्व विद्यमान रहता है।

संदर्भ सूची

1. मार्कण्डेय पुराण–50.40–41
2. वायु पुराण–33.50–52
3. अग्निपुराण–10.10–12
4. कूर्मपुराण–41.37–38
5. ब्रह्मपुराण–1.2.14.61–62
6. वराह पुराण–47.19–24
7. लिंग पुराण–47, 19–24
8. श्रीमद्भागवत पुराण–5.7.2–3
9. नृसिंह पुराण–30.6–7
10. आदिपुराण–15.159ऋ 17.76ऋ 37.203
11. पद्मपुराण–20.124.ऋ 4.59
12. पुरुदेवचम्पू–6.62
13. आदि पुराण–15.159
14. पं. चन्द्रकान्त बाली, हिन्दुस्तान दैनिक, 22 जन, 1989.
15. अथर्ववेद–11.5.17
16. वाल्मीकी रामायण–किष्किंधा काण्ड
17. विष्णु पुराण–3.3.24
18. वही– 2.3.25
19. वही– 2.3.26
20. वही–2.3.4
21. वही–2.3.5
22. वही–2.3.1–2
23. वही–2.3.3
24. वही–2.3. 6–17
25. आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सहिताः सदा समीपतो महाभाग ह्रष्टपुष्टजनाकुलाः– वही 2.3.20
26. क्षत्राणि चात्र दीयन्ते परलोकार्थमाहरात्
विष्णुपुराण 2.3.6–17
27. पुरुषैर्यज्ञपुरुषो जम्बूद्वीपे सदेष्यते। यज्ञैर्यज्ञमयो विष्णुरन्यद्वीपेषु चान्यथा। वही 2.3.21
28. अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम।
कदाचिल्लयते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसंचयात्। विष्णुपुराण–2.3.23
29. भागवत पुराण– 5.19.21. गोरखपुर सं. 2033 पृ. 252
30. वही–5.19.23. गोरखपुर सं. 2033 पृ. 252
31. वही–5.1921 गोरखपुर सं. 2033 पृ. 253
32. ब्रह्म पुराण–27/2

33. वही–70 / 21
34. वही 70 / 24
35. विष्णु पुराण–2 / 3 / 2
36. मार्कण्डेय पुराण–55 / 21–22
37. वही–57 / 62
38. महाभारत–वनपर्व 181 / 31
39. देवी भागवत पुराण–1.2.36–38
40. अग्नि पुराण 29–34 / 380
41. छान्दोग्योपनिषद्–6.12.1